मूल्य : 25 रुपये

वर्ष : 3, अंक : 9, जनवरी–मार्च, 2011

पारस-पखान

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

पारस-बेला न्यास

माता जी : फोटो गैलरी

वर्ष–3, अंक–9, जनवरी–मार्च, 2011

मूल्य : 25 रुपये

अनुक्रमणिका

पारस-पखान

(हिंदी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी)

संपादकीय 2

पाठकों की पाती 3

श्रद्धा-सुमन

अपने प्यारे बाबूजी, माँ — *डॉ. अनिल कुमार पाठक* 4, 5

कालजयी

जिंदगी मेरी प्रिये... — *पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'* 6

काहे को ब्याहे बिदेस — *अमीर खुसरो* 7

यह कदम्ब का पेड़ — *सुभद्रा कुमारी चौहान* 9

पैदल आदमी — *रघुवीर सहाय* 10

चंदू मैंने सपना देखा — *नागार्जुन* 11

कोशिश करने वालों की — *हरिवंशराय बच्चन* 12

चेतावनी — *हरिकृष्ण प्रेमी* 13

वतन का गीत — *गोरख पाण्डेय* 14

क्यों बाकी है — *शमशेर बहादुर सिंह* 15

टुकड़े-टुकड़े दिन बीता... — *मीना कुमारी* 16

समय के सारथी

न मैं चुप हूँ न गाता हूँ — *अटल बिहारी वाजपेयी* 17

हाँ इजाजत है अगर... — *मुनव्वर राना* 18

अनाथ की मां — *शिवकुमार बिलग्रामी* 19

असली तस्वीर — *रत्ना मिश्र* 20

गीत कविता का हृदय है — *ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग'* 21

समय की शिला पर — *शंभुनाथ सिंह* 22

किरणों के गीत — *नरेन्द्र चंचल* 23

अन्वेषण — *सर्वेश्वर* 24

आदमी सा काम कर — *डॉ. आदित्य शुक्ल* 25

एक भी आँसू न कर बेकार — *रामावतार त्यागी* 26

तुम्हारी आँख के आँसू — *प्रवीण शुक्ल* 27

मकान — *प्रो. अनंत मिश्र* 28

प्रवासी के बोल

हो बहुत मुबारक नया साल — *दीपिका जोशी 'संध्या'* 29

तुमसे क्या मांगूं भगवान — *हिम्मत मेहता* 30

न जाने क्यों — *हरिहर झा* 31

गुमशुदा — *स्वप्न मंजूषा शैल* 32

शिक्षा का संधान चाहिए — *रामकृष्ण द्विवेदी 'मधुकर'* 33

नारी-स्वर

अरी मौत अपना कदम तू हटा ले — *डॉ. मधु भारतीय* 34

नवांकुर

ग़ज़ल — *तूलिका सेठ* 36

दृष्टिकोण

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद — *डॉ. अभिषेक कुमार मिश्र* 37

संपादक

डॉ. सुनील जोगी

आपके सुझावों और रचनाओं का स्वागत है–

kavi**sunil**jogi@gmail.com

संरक्षक

डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
श्री अभिमन्यु कुमार पाठक;
श्री अरुण कुमार पाठक;
श्री राजेश प्रकाश;
डॉ. अनिल कुमार;
डॉ. अशोक मधुप।

लेआउट एवं टाइपसेटिंग :

इंडिका इन्फोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली –110058

प्रवासी संपादकीय सलाहकार

डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल (नार्वे)
श्री ब्रह्म शर्मा (सिंगापुर)
श्री सी. एम. सरदार (मस्कट)

संपादकीय कार्यालय

आर-101 ए, गीता अपार्टमेन्ट
खिड़की एक्सटेन्शन,
मालवीय नगर
नयी दिल्ली –110017
दूरभाष –98110-05255

मूल्य : 25 रुपए

वार्षिक : 100 रुपए
पंचवार्षिक : 450 रुपए
आजीवन : 5,000 रुपए
विदेशों में : $ 5
(एक अंक)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक **प्रसून प्रतिष्ठान** के लिए **डॉ. अनिल कुमार** द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ में मुद्रित एवं सी-49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित। संपादक **–डॉ. सुनील जोगी**।

'पारस-पखान' में प्रकाशित रचनाओं के रचयिताओं के विचार अपने हैं। विवादास्पद मामले लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

संपादकीय

विगत दिनों मैं एक काव्य चर्चा में भाग लेने गया। विमर्श का मुद्दा था मौजूदा दौर में कविता क्या है? एक अधिकारी विद्वान ने टिप्पणी की, "आज के घोटालों के दौर में जब कोई घोटाला आदर्श घोटाला हो तो यह भी एक कविता है। जब भी आदर्श की बात होगी आदर्श घोटाले पर चर्चा जरूर होगी। हाल में '2 जी स्पेक्ट्रम घोटाला' और 'कॉमनवेल्थ गेम घोटाला' मीडिया में छाये रहे। लोगों को शायद घोटालों के बारे में गहराई से कुछ भी पता नहीं और इसीलिए खास रंज भी नहीं है। हां, मिल-बैठकर बात करते हैं तो इस बात का सुकून जाहिर जरूर है कि चलो हमारा मुल्क इस काबिल हुआ कि अरबों-खरबों के घोटाले हो सकें, वरना करप्शन का लेवल बहुत 'लो' था। शर्म आती थी। अच्छा हुआ हमारा स्टैंडर्ड ऊंचा हुआ। लोग करप्सन के नाम पर बिफरते खूब हैं, बिदकते नहीं।"

काव्य जगत में भी बड़ा करप्शन है, पर यहां पांसा उलटा है। यहां 'करप्ट' कविताओं से लोग बिदकते हैं। वे ऐसी कविताओं के आस-पास भी नहीं जाते, लोगों को हमेशा अच्छी कविताओं की तलाश रहती है। इस अंक में भी हमने अपने पाठकों की उस तलाश को ध्यान में रखते हुए बेहतरीन कविताएं संकलित की हैं और उन्हें आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। इसमें हमने सुभद्रा कुमारी चौहान, पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून', नागार्जुन, रघुवीर सहाय, हरिवंशराय बच्चन जैसे लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकारों की कुछ नये अंदाज और नये तेवर वाली कविताओं को लिया है, वहीं समय के सारथी स्तम्भ में विविध रंगों वाली हृदयस्पर्शी कविताओं को स्थान दिया है। सभी कविताएं अपने-आप में बेजोड़ हैं और काव्यप्रेमियों के लिए अमूल्य धरोहर हैं।

पारस पखान के इस अंक में हमने प्रख्यात रचनाकार और आलोचक तथा हिंदी के मूर्धन्य विद्वान डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की डॉ. अभिषेक कुमार मिश्र से हुई साहित्य चर्चा के कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों को भी प्रकाशित किया है। यह चर्चा हमारे सुधी पाठकों विशेषकर शोधार्थियों के लिए अत्यधिक ज्ञानपरक और साहित्य के प्रति नई दृष्टि पैदा करने वाली है। आशा है कि यह अंक भी आपको सदैव की भांति सुखकर और प्रेरक लगेगा।

–डॉ. सुनील जोगी
(संपादक)
मोबा. : 09811005255
ई-मेल : kavi**sunil**jogi@gmail.com

पाठकों की पाती

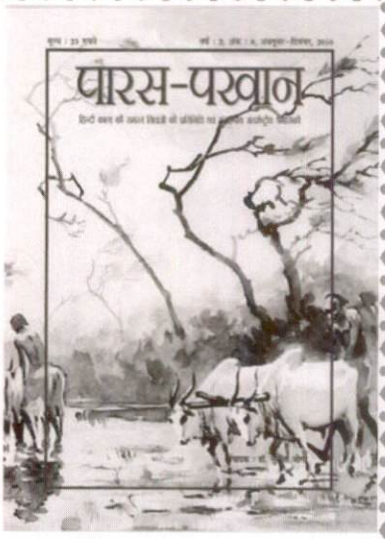

पारस पखान का अक्टूबर-दिसंबर, 2010 अंक अपने एक मित्र के सौजन्य से देखने को मिला। कविता केंद्रित ऐसी सुरुचिपूर्ण पत्रिका शायद ही कभी देखने-पढ़ने को मिली हो। कविताओं को खंडों में बांट कर इतने तरतीब से प्रस्तुत करने में संपादकीय कौशल साफ दिखता है। 'कालजयी' के अंतर्गत जिन कविताओं को शामिल किया गया, निश्चय ही वे सब मील के पत्थर हैं। 'समय के साक्षी' गोपाल दास 'नीरज', अदम गोंडवी आदि सरीखे मूर्धन्य रचनाकारों की रचनाओं का रस और आनंद कुछ अलग ही है। 'प्रवासी के बोल' के अंतर्गत विदेशों में अपने ही लोगों की अपनी मिट्टी के प्रति सहज आकर्षण करुणार्द्र करती है। अंत में 'नारी-स्वर' एवं 'नवांकुर' को जगह देकर आप हर प्रकार के स्वरों का रसास्वादन करवा देते हैं। बची हुई जगहों में खूबसूरत 'शेरों' को लगाकर आप अंततः पत्रिका को 'सम्पूर्ण' बनाकर ही दम लेते हैं। बधाई!

रमेश चंद्र तिवारी, इलाहाबाद, उ.प्र.

पारस पखान का अंक आठ मिला। पत्रिका का मुखपृष्ठ ही इतना मनमोहक लगा कि हम मजमून भांप गए लिफाफा देखकर! सच, प्रेमचंद की 'दो बैलों की कथा' का स्मरण हो आया। हल-बैल चलाते-हांकते हलवाहों वाला कवर चित्ताकर्षक लगा। जमीन और गांव से कट रहे इस समय में भी आप गांव के चित्र को अपनी पत्रिका का मुखचित्र बना रहे हैं तो इसका मतलब है कि आपको माटी-पानी से लगाव है। जो जड़ से जुड़ता है वही जिंदा रहता है–इस फलसफे को मानें तो आपकी पत्रिका कालजयी बनने की राह पर है। अस्तु! सुमित्रानंदन पंत की 'भारत माता' शीर्षक कविता आपके कवर पृष्ठ को ही रूपायित करती प्रतीत हुई। महादेवी वर्मा की कविता 'मैं नीर भरी दुख की बदली' आज भी महिलाओं की स्थिति का एक उदास बयान सरीखा है।

रमेश कुमार ठाकुर, गाजियाबाद, उ.प्र.

अक्टूबर-दिसंबर, 2010 का **पारस पखान** अपने पूर्ववर्ती अंकों की शृंखला की विशेषताओं का ही विस्तार और परिष्कार लगा। 'कारवां गुजर गया, गुबार देखते रहें'–नीरज रचित यह काव्य पंक्ति अब एक मुहावरा जैसा ही बन गया है। बहुत दिनों बाद 'कारवां गुजर गया' शीर्षक इस कविता को उसकी संपूर्णता में पढ़ने का सुयोग मिला। इसी अंक में गोपलदास नीरज को मिले सम्मान संबंधी रिपोर्ट भी पढ़ा। मुझे लगता है कि नीरज को सम्मानित कर वह संस्था विशेष स्वयं ही सम्मानित हो गई है। सूरज को भला दीप क्या दिखाना! नीरज तो अब सम्मानातीत हो गए हैं। उम्र के इस पड़ाव पर भी उनकी सक्रियता रोमांचित करती है, इससे अधिक प्रेरित और प्रोत्साहित करती है। ऐसे महान व्यक्तित्व को मेरा शतशः प्रणाम!

धीरेंद्र लोचन, लखनऊ, उ.प्र.

पारस पखान अपने नाम के अनुकूल ही है–मिट्टी को छू दें तो सोना बन जाए। 'कविता भी एक जगह है' पढ़ा था कहीं–पारस पखान को पढ़कर जाना कि वह जगह यही है। कविता ही कविता–हर रंग, हर रूप, हर तेवर और हर कलेवर के। कविता भी विचार देती है, पारस पखान को पढ़ने वाला हर पाठक यह मानेगा। पत्रिका अंक आठ में अदम गोंडवी की गजल पत्रिका को इज्जत बख्शती है। काजू भुनी फ्लेट में, व्हिस्की गिलास में/उतरा है रामराज विधायक निवास में। सच, यह संपूर्ण गजल पढ़कर खून खौल जाता है। रामराज लाने का वादा और दावा करने वाले राजनेताओं ने अपने निवास में बेशक रामराज उतार लिया हो पर देश की 90% आवादी अब भी सड़क पर है। लेकिन सड़क से संसद तक तिकड़म-भिड़ाकर पहुंचे नेताओं को अपने सड़क के वे दिन तो अब याद भी नहीं होंगे, क्योंकि उजले लिबासों में तस्कर गरीबों का लहू चूसकर ही अपने निवासों में रामराज का सुख भोग रहे हैं।

सुधीर कुमार, दिल्ली

अपने प्यारे बाबूजी

– डॉ. अनिल कुमार पाठक

तकलीफों के बोझ तले,
सूने आँगन में बीता बचपन।
हर पल पाई थी पीड़ा,
हर पल पाई थी अड़चन।
फिर भी हँसते रहे सदा,
सबसे न्यारे बाबू जी।
अपने प्यारे बाबू जी।

कभी मिला विश्वासघात
कभी रुकावट औ' धोखा।
काँटो की राह रही उनकी
सबने रोका, सबने टोका।
फिर भी चलते रहे सदा,
आँखों के तारे बाबू जी।
अपने प्यारे बाबू जी।

निर्भीक सदा वे डिगे नहीं,
झेले कष्टों के रेले।
झंझावातों में अलग-थलग,
छूट गये सारे मेले।
फिर भी बढ़ते रहे सदा,
सबसे न्यारे बाबू जी।
अपने प्यारे बाबू जी।

सर्दी-गर्मी, धूप-छाँव में,
बिन संगी, बिन साथी के।
टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी पर
बिना सहारे लाठी के।
फिर भी चलते रहे सदा,
कभी न हारे बाबू जी।
अपने प्यारे बाबू जी।

माँ

(लम्बी कविता के कुछ अंश)

– डॉ. अनिल कुमार पाठक

माँ क्यूँ चुप रहती है हरदम,
माँ क्यूँ चुप रहती है।
शायद यह एक वहम हमारा,
वह हरदम कुछ कहती है।
समझ नहीं पाते शायद हम,
उसकी खुशियाँ उसका गम।
घूँट-घूँट जो पीती आँसू,
फिर भी आँखे दिखी न नम।
हृदय हुआ मर्माहत फिर भी,
वाणी कुछ न कहती है।
माँ... ॥1॥

जब जीवन की बुनियाद पड़ी,
सबसे पहले माँ हुई खड़ी।
भूल गये अब वही घड़ी,
पर क्या उससे चीज बड़ी।
माँ ही सूरज, चाँद-सितारा,
माँ ही प्यारी धरती है।
माँ... ॥2॥

पीड़ा से उसका जो नाता,
शायद उसको यही है भाता।
सारे जग की वह त्राता,
तभी तो उसका नाम है माता।
क्यूँ हम उसका करें मूल्य कम,
जब कोई मूल्य न लेती है।
माँ... ॥3॥

आड़ा-तिरछा, सकरा-कोना,
भीगे बिस्तर पर भी सोना।
सुन न सकी जो कभी भी रोना,
झुककर, मुड़कर बनी जो दोना।
सुंदर, सुखद भविष्य बने बस,
इसके खातिर सब सहती है।
माँ... ॥4॥

कैसे-कैसे पापड़ बेले,
झेले उसने सभी झमेले।
आये बहुत दुखों के रेले,
किया नहीं पर हम अकेले।
पर अब वह गुम-सुम खोई,
आँखों से कुछ कहती है।
माँ... ॥5॥

याद करो अपना वह बचपन,
सुन लेती वह सबकी धड़कन।
पार किया क्या माँ ने पचपन,
लगने लगी वही अब अड़चन।
फिर भी संतानों के खातिर,
हर क्षण तत्पर रहती है।
माँ... ॥6॥

रिश्ता यही अनोखा है,
बाकी सब कुछ धोखा है।
सच बस माँ की स्नेहिल छाया,
सब आंधी का झोंका है।
माँ तो अन्तःसलिला है,
जो बिना दिखे ही बहती है।
माँ... ॥7॥

जिंदगी मेरी प्रिये इस पार भी उस पार भी

– पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जिंदगी मेरी प्रिये इस पार भी उस पार भी,
हर जगह मेरी विजय है, हर जगह है हार भी।

साथ सौरभ के कभी तो साथ हूं अंगार के,
साथ सरिता के कभी तो साथ मैं ज्वार के,
मिलता हृदय का प्यार तो मिलती विरह की धार भी,
जिंदगी मेरी प्रिये इस पार भी उस पार भी।

कंटकों की झाड़ियों में या सुमन के प्यार में,
शुष्क पीली डालियों में या किसलयों के हार में,
भाग्य स्वागत कर रहा मिलता दुखों का द्वार भी,
जिंदगी मेरी प्रिये इस पार भी उस पार भी।

रात रोती साथ मेरे औ' सुबह है गीत-गाता,
है अमा मुझको सुलाती तो भोर है मुझको जगाता,
रात काली है, कभी तो सूर्य का श्रृंगार भी,
जिंदगी मेरी प्रिये इस पार भी उस पार भी।

व्यथित उर के इस सदन में धरा की गोद में,
जगत की कठिनाईयों में या हृदय के मोद में,
चलता जो कभी रेत पर मिलती सलिल की धार भी,
जिंदगी मेरी प्रिये इस पार भी उस पार भी।

काहे को ब्याहे बिदेस

– अमीर खुसरो

काहे को ब्याहे बिदेस,
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

भैया को दियो बाबुल महले, दो-महले
हमको दियो परदेस
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

हम तो बाबुल तोरे खूँटे की गैयाँ
जित हाँके हँक जैहें
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

हम तो बाबुल तोरे बेले की कलियाँ
घर-घर माँगे हैं जैहें
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

कोठे तले से पलकिया जो निकली
बीरन में छाए पछाड़
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

हम तो हैं बाबुल तोरे पिंजरे की चिड़ियाँ
भोर भये उड़ जैहें
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

तारों भरी मैंने गुड़िया जो छोड़ी
छूटा सहेली का साथ
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

डोली का पर्दा उठा के जो देखा
आया पिया का देस
अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस

अरे, लखिय बाबुल मोरे
काहे को ब्याहे बिदेस
अरे, लखिय बाबुल मोरे

(इस रचना के कुछ अंशों को हिन्दी फिल्म उमराव जान के लिये जगजीत कौर ने खय्याम के संगीत में गाया भी है।)

ज़िंदगी क्या इसी को कहते हैं
जिस्म तन्हा है और जां तन्हा।
—मीना कुमारी

यह कदम्ब का पेड़

– सुभद्रा कुमारी चौहान

यह कदंब का पेड़ अगर माँ होता यमुना तीरे।
मैं भी उस पर बैठ कन्हैया बनता धीरे-धीरे।।

ले देती यदि मुझे बांसुरी तुम दो पैसे वाली।
किसी तरह नीची हो जाती यह कदंब की डाली।

तुम्हें नहीं कुछ कहता पर मैं चुपके-चुपके आता।
उस नीची डाली से अम्मा ऊँचे पर चढ़ जाता।

वहीं बैठ फिर बड़े मजे से मैं बांसुरी बजाता।
अम्मा-अम्मा कह बंसी के स्वर में तुम्हें बुलाता।

बहुत बुलाने पर भी माँ जब नहीं उतर कर आता।
माँ, तब माँ का हृदय तुम्हारा बहुत विकल हो जाता।

तुम आँचल फैला कर अम्मा वहीं पेड़ के नीचे।
ईश्वर से कुछ विनती करती बैठी आँखें मीचे।

तुम्हें ध्यान में लगी देख मैं धीरे-धीरे आता।
और तुम्हारे फैले आँचल के नीचे छिप जाता।

तुम घबरा कर आँख खोलती, पर माँ खुश हो जाती।
जब अपने मुन्ना राजा को गोदी में ही पाती।

इसी तरह कुछ खेला करते हम-तुम धीरे-धीरे।
यह कदंब का पेड़ अगर माँ होता यमुना तीरे।।

समझा के थक गए तो स्वयं मौन हो गए
कहने लगे बच्चे अब पापा सुधर गए।
–सजीवन मयंक

पैदल आदमी

– रघुवीर सहाय

जब सीमा के इस पार पड़ी थी लाशें
तब सीमा के उस पार पड़ी थी लाशें
सिकुड़ी ठिठरी नंगी अनजानी लाशें

वे उधर से इधर आ करके मरते थे
या इधर से उधर जा करके मरते थे
यह बहस राजधानी में हम करते थे
हम क्या रुख़ लेंगे यह इस पर निर्भर था
किसका मरने से पहले उनको डर था
भुखमरी के लिए अलग-अलग अफ़सर था

इतने में दोनों प्रधानमंत्री बोले
हम दोनों में इस बरस दोस्ती हो ले
यह कहकर दोनों ने दरवाजे खोले

परराष्ट्र मंत्रियों ने दो नियम बताये
दो पारपत्र उसको जो उड़कर आये
दो पारपत्र उसको जो उड़कर जाये

पैदल को हम केवल तब इज्जत देंगे
जब देकर के बंदूक उसे भेजेंगे
या घायल से घायल अदले-बदलेंगे

पर कोई भूखा पैदल मत आने दो
मिट्टी से मिट्टी को मत मिल जाने दो
वरना दो सरकारों का जाने क्या हो

शुक्रिया अय दोस्तो खंजर का मेरी पीठ पर
हो गया मशहूर 'पंकज' आपका एहसान है।
–आर.के. पंकज

चंदू मैंने सपना देखा

– नागार्जुन

चंदू, मैंने सपना देखा, उछल रहे तुम ज्यों हिरनौटा
चंदू, मैंने सपना देखा, अमुआ से हूँ पटना लौटा
चंदू, मैंने सपना देखा, तुम्हें खोजते बद्री बाबू
चंदू, मैंने सपना देखा, खेल-कूद में हो बेकाबू

चंदू, मैंने सपना देखा, कल परसों ही छूट रहे हो
चंदू, मैंने सपना देखा, खूब पतंगे लूट रहे हो
चंदू, मैंने सपना देखा, लाए हो तुम नया कलैंडर
चंदू, मैंने सपना देखा, तुम हो बाहर, मैं हूँ बाहर
चंदू, मैंने सपना देखा, अमुआ से पटना आए हो
चंदू, मैंने सपना देखा, मेरे लिए शहद लाए हो

चंदू, मैंने सपना देखा, फैल गया है सुयश तुम्हारा
चंदू, मैंने सपना देखा, तुम्हें जानता भारत सारा
चंदू, मैंने सपना देखा, तुम तो बहुत बड़े डॉक्टर हो
चंदू, मैंने सपना देखा, अपनी ड्यूटी में तत्पर हो
चंदू, मैंने सपना देखा, इम्तिहान में बैठे हो तुम
चंदू, मैंने सपना देखा, पुलिस-यान में बैठे हो तुम

चंदू, मैंने सपना देखा, तुम हो बाहर, मैं हूँ बाहर
चंदू, मैंने सपना देखा, लाए हो तुम नया कलैंडर

रेशा-रेशा टूटती है वो सुबह से शाम तक
पर मेरी ख़ातिर बचाकर ताज़गी रखे है वो।
–अशोक वर्मा

कोशिश करने वालों की

– हरिवंशराय बच्चन

लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है,
चढ़ती दीवारों पर, सौ बार फिसलती है।
मन का विश्वास रगों में साहस भरता है,
चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना न अखरता है।
आख़िर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

डुबकियां सिंधु में गोताखोर लगाता है,
जा जा कर खाली हाथ लौटकर आता है।
मिलते नहीं सहज ही मोती गहरे पानी में,
बढ़ता दुगना उत्साह इसी हैरानी में।
मुट्ठी उसकी खाली हर बार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

असफलता एक चुनौती है, इसे स्वीकार करो,
क्या कमी रह गई, देखो और सुधार करो।
जब तक न सफल हो, नींद चैन को त्यागो तुम,
संघर्ष का मैदान छोड़ कर मत भागो तुम।
कुछ किये बिना ही जय जय कार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

एक निर्णय भी नहीं हाथ में मेरे, बेटी
कोख मेरी है मगर कैसे बचा लूं तुझको।
–ममता किरण

चेतावनी

– हरिकृष्ण प्रेमी

है सरल आज़ाद होना,
पर कठिन आज़ाद रहना।

राष्ट्र से तूने कहा है
क्रोध निर्बलता हृदय की,
स्वार्थ है संताप की जड़,
शील है अनमोल गहना।
है सरल आज़ाद होना,
पर कठिन आज़ाद रहना।

यह न समझो मुक्ति पाकर,
कर चुके कर्तव्य पूरा,
देश को श्री शक्ति देने
के लिए है कष्ट सहना
है सरल आज़ाद होना,
पर कठिन आज़ाद रहना।

देश को बलयुक्त करने
यदि न संयम से चले हम,
काल देगा दासता की
फिर हमें जंजीर पहना।
है सरल आज़ाद होना,
पर कठिन आज़ाद रहना।

भीत हो कानून से मन
राह पर आता नहीं है,
अग्रसर होना कुपथ पर
वासना का मान कहना।
है सरल आज़ाद होना,
पर कठिन आज़ाद रहना।

मान कर आदेश तेरा
ले अहिंसा पथ ग्रहण कर,
बन्द होगा भूमि पर तब,
मानवों का रक्त बहना।
है सरल आज़ाद होना,
पर कठिन आज़ाद रहना।

बहुत ऊंची पहुंच है उसकी शायद आसमानों तक
किये हैं क़त्ल कितने फिर भी वो क़ातिल नहीं लगता।
–सरोज व्यास

वतन का गीत

– गोरख पाण्डेय

हमारे वतन की नई जिन्दगी हो
नई जिन्दगी इक मुकम्मिल खुशी हो
नया हो गुलिस्ताँ नई बुलबुलें हों
मुहब्बत की कोई नई रागिनी हो
न हो कोई राजा न हो रंक कोई
सभी हों बराबर सभी आदमी हों
न ही हथकड़ी कोई फसलों को डाले
हमारे दिलों की न सौदागिरी हो
जुबानों पे पाबन्दियाँ हों न कोई
निगाहों में अपनी नई रोशनी हो
न अश्कों से नम हो किसी का भी दामन
न ही कोई भी कायदा हिटलरी हो
सभी होंठ आजाद हों मयकदे में
कि गंगो-जमन जैसी दरियादिली हो
नए फैसले हों नई कोशिशें हों
नयी मंजिलों की कशिश भी नई हो।

काम आऊंगा दबे पांव गुज़रने वालो
मैं गए वक़्त का पत्थर हूं उठा लो मुझको।
–देवेन्द्र मांझी

क्यों बाकी है

– शमशेर बहादुर सिंह

उलट गए सारे पैमाने कासागरी क्यों बाकी है।
देस के देस उजाड़ हुए दिल की नगरी क्यों बाकी है।

कौन है अपना कौन पराया छोड़ो भी इन बातों को
इक हम तुम हैं खैर से अपनी पर्दादरी क्यों बाकी है।

शायद भूले भटके किसी को रात हमारी याद आई
सपने में जब आन मिले फिर बेखबरी क्यों बाकी है।

किसका सांस है मेरे अंदर इतने पास औ इतनी दूर
इस नजदीकी में दूरी की हम सफरी क्यों बाकी है।

बीत गये युग फिर भी जैसे कल ही तुमको देखा हो
दिल में और आंखों में तुम्हारी खुशनजरी क्यों बाकी है।

शोर भजन कीर्तन का है या फिल्मी धुनों का हंगामा
सर पे ही लाउडस्पीकर की टेढ़ी छतरी क्यों बाकी है।

धर्म तिजारत पेशा था जो वही हमें ले डूबा है
बीच भंवर के सौदे में यह एक खंजरी क्यों बाकी है।

हर शख़्स दूसरे से यहां, बेनियाज़ है
क्या जानिए कि फ़र्क क्यों, इतना दिलों में है।
–बशीर बद्र

टुकड़े-टुकड़े दिन बीता, धज्जी-धज्जी रात मिली

– मीना कुमारी

टुकड़े-टुकड़े दिन बीता, धज्जी-धज्जी रात मिली
जिसका जितना आँचल था, उतनी ही सौगात मिली

रिमझिम-रिमझिम बूँदों में, जहर भी है और अमृत भी
आँखें हँस दीं दिल रोया, यह अच्छी बरसात मिली

जब चाहा दिल को समझें, हँसने की आवाज सुनी
जैसे कोई कहता हो, ले फिर तुझको मात मिली

मातें कैसी घातें क्या, चलते रहना आठ पहर
दिल-सा साथी जब पाया, बेचैनी भी साथ मिली

होंठों तक आते आते, जाने कितने रूप भरे
जलती-बुझती आँखों में, सादा-सी जो बात मिली

वक़्त सीधा कभी नहीं होता
इसके माथे पै सौ लकीरें हैं।
–मृणालिनी धुले

न मैं चुप हूँ न गाता हूँ

– अटल बिहारी वाजपेयी

सवेरा है मगर पूरब दिशा में
घिर रहे बादल
रूई से धुंधलके में
मील के पत्थर पड़े घायल
ठिठरे पाँव
ओझल गाँव
जड़ता है न गतिमयता
स्वयं को दूसरों की दृष्टि से
मैं देख पाता हूँ
न मैं चुप हूँ न गाता हूँ।

समय की सर्द साँसों ने
चिनारों को झुलस डाला,
मगर हिमपात को देती
चुनौती एक द्रुममाला,
बिखरे नीड़,
विहँसी चीड़,
आँसू हैं न मुस्काने
हिमानी झील के तट पर
अकेला गुनगुनाता हूँ
न मैं चुप हूँ न गाता हूँ

तमन्ना थी बचपन से परवाज़ की
जब उड़ने को आए तो पर कट गए
–शकूर अनवर

हाँ इजाजत है अगर कोई कहानी और है

– मुनव्वर राना

हाँ इजाजत है अगर कोई कहानी और है
इन कटोरों में अभी थोड़ा सा पानी और है

मजहबी मजदूर सब बैठे हैं इनको काम दो
इक इमारत शहर में काफी पुरानी और है

ख़ामुशी कब चीख़ बन जाये किसे मालूम है
जुल्म कर लो जब तलक ये बेजबानी और है

ख़ुश्क पत्ते आँख में चुभते हैं काँटों की तरह
दश्त में फिरना अलग है बागबानी और है

फिर वही उकताहटें होंगी बदन चौपाल में
उम्र के किस्से में थोड़ी-सी जवानी और है

बस इसी अहसास की शिद्दत ने बूढ़ा कर दिया
टूटे-फूटे घर में इक लड़की सयानी और है

मरज़ समझा न मेरा दर्द जाना
कहा बेदर्द ने फिर जल्द आना।
शिव कुमार बिलग्रामी

अनाथ की मां

– शिवकुमार बिलग्रामी

अनाथ की मां,
एक सपना होती है,
और उस सपने में मां,
...हमेशा रोती है।

जब भी उसका लाल,
भूखा, प्यासा, बेहाल
सड़क पर भटकता है,
या फुटपाथ पर सोता है,
सपने वाली मां का,
बुरा हाल होता है।

सर्दियों की रात में,
सिकुड़कर गठरी बने,
अपने लाल के बालों में,
उंगलियां फंसाकर,
मां उसे सहलाती है,
'मां रोज-रोज सपनों में आती है'

इंसानियत के दुश्मन,
जब भी उसके लाल को,
बात-बेबात सताते हैं,
अपने स्वार्थ के लिए,
कभी उठाईगीर
तो कभी चोर बताते हैं
और अनियंत्रित हो,
लात-घूंसा बरसाते हैं,
तब अक्सर सपनों वाली मां,
अपने बेहोश लाल के पास आती है
हाथ का सहारा दे,
उसको उठाती है,
चोटों को सहलाती है

मां की मखमली
जादुई उंगलियों के स्पर्श से
अनाथ ज्यों-ज्यों सुकून पाता है
उसके दिल में
यही खयाल आता है
कि यदि मां...
सपनों में भी न आती
तब तो मेरी–
दुनिया ही उजड़ जाती...
दुनिया ही उजड़ जाती...
दुनिया ही उजड़ जाती...

सलाम करके गुजरता था उस मज़ार को मैं
पता चला कि किसी ने ज़मीन घेरी है।
–शक़ील ग्वालियरी

असली तस्वीर

– रत्ना मिश्र

शांति कुंज लिखा बाहर, पर भीतर झंझट भारी है।
तेरी न मेरी न उसकी, ये तस्वीर हमारी है।

हंसकर जब दामन फैलाया, फूलों ने लूटी शबनम,
अपना हाल हुआ कांटो-सा, बाकी बस खुद्दारी है।

अपने घर की किस्मत में था, आंगन ना तुलसी चौरा,
गमले में ये नागफनी ही अब पहचान हमारी है।

अपनों से हरगिज मत रखना दवा-दुआ की उम्मीदें,
रूठे मन को लगा हुआ घुन सबको ही बीमारी है।

साफ बात तो बस इतनी सी, दुनिया की है रीति यही,
होंठों पर मुस्कान मगर मन में तलवार दुधारी है।

बहारों में भी मय से परहेज तौबा
मियां आप काफिर हुए जा रहे हैं।
–खुमार बाराबंकवी

गीत कविता का हृदय है

– ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग'

हम अछांदस आक्रमण से, छंद को डरने न देंगे
युग-बयार बहे किसी विधि, गीत को मरने न देंगे
गीत भू की गति, पवन की लय, अजस्त्र प्रवाहमय है
पक्षियों का गान, लहर विधान, निर्झर का निलय है
गीत मुरली की मधुर ध्वनि, मंद्र सप्तक है प्रकृति का
नवरसों की आत्मा है, गीत कविता का हृदय है
बेसुरे आलाप को सुर का हरण करने न देंगे
गीत को मरने न देंगे।

शब्द संयोजन सृजन में, गीत सर्वोपरि अचर है
जागरण का शंख, संस्कृति-पर्व का पहला प्रहर है
गीत का संगीत से संबंध शाश्वत है, सहज है
वेदना की भीड़ में, संवेदना का स्वर मुखर है
स्नेह के इस राग को, वैराग्य हम वरने न देंगे
गीत को मरने न देंगे।

गीत हैं सौंदर्य, शिव साकार, सत का आचरण है
गीत वेदों, संहिताओं के स्वरों का अवतरण है
नाद है यह ब्रह्मा का, संवाद है मां भारती का
गीत वाहक कल्पना का, भावनाओं का वरण है
गीत-तरु का विकच कोई पुष्प हम झरने न देंगे
गीत को मरने न देंगे।

नींद की कहानी कभी फिर सुनाना
मैं प्यासा हूं दो घूंट पानी पिलाना
–कन्हैयालाल नंदन

समय की शिला पर

– शंभुनाथ सिंह

समय की शिला पर मधुर चित्र कितने
किसी ने बनाए, किसी ने मिटाए।
किसी ने लिखी आँसुओं से कहानी
किसी ने पढ़ा किन्तु दो बूंद पानी
इसी में गए बीत दिन जिन्दगी के
गई घुल जवानी, गई मिट निशानी।
विकल सिन्धु के साथ के मेघ कितने
धरा ने उठाए, गगन ने गिराए।
शलभ ने शिखा को सदा ध्येय माना,
किसी को लगा यह मरण का बहाना
शलभ जल न पाया, शलभ मिट न पाया
तिमिर में उसे पर मिला क्या ठिकाना?
प्रणय-पंथ पर प्राण के दीप कितने
मिलन ने जलाए, विरह ने बुझाए।
भटकती हुई राह में वंचना की
रूकी श्रांत हो जब लहर चेतना की
तिमिर-आवरण ज्योति का वर बना तब
कि टूटी तभी श्रंखला साधना की।
नयन-प्राण में रूप के स्वप्न कितने
निशा ने जगाए, उषा ने सुलाए।
सुरभि की अनिल-पंख पर मोर भाषा
उड़ी, वंदना की जगी सुप्त आशा
तुहिन-बिन्दु बनकर बिखर पर गए स्वर
नहीं बुझ सकी अर्चना की पिपासा।
किसी के चरण पर वरण-फूल कितने
लता ने चढ़ाए, लहर ने बहाए।

अभी न छीन तू परवाज़ उस परिंदे की
अभी तो उसने कई घोंसले बनाने हैं।
–ज्ञान प्रकाश विवेक

किरणों के गीत

– नरेन्द्र चंचल

आँधी पानी से डरते हो
कैसी नादानी करते हो

मैंने जीवन में देखा है
अंधियारे पंथ बदलते है
किरणों के गीत मचलते हैं।

उन मस्त किसानों को देखो
तपते हैं, फसल उगाते है
प्यासों को पानी देते है
पौरूष की गजल सुनाते हैं

धूपों से अक्सर डरते हो
रातों में जागे फिरते हो

मैंने जीवन में देखा है
पर्वत से निर्झर चलते हैं
किरणों के गीत मचलते हैं।

श्रम की भी अपनी गीता है
जिसने पढ़ ली वह सफल हुआ
माथे पर स्वेद नहीं छलका
उसका तन मन कब विमल हुआ

मझधारों से कतराते हो
फिर भूलों पर पछताते हो
मैंने मन्थन में देखा है

थाहों में रत्न निकलते हैं
किरणों के गीत मचलते हैं।

अन्वेषण

– सर्वेश्वर

हम काला सोना ढूंढ़ रहे हैं धरती के भीतर।
नदियां, घाटी, जंगल, पर्वत, सागर के अंदर।

पहले तो तकनीक हमारी शैशव वाली थी,
पर श्रम बुद्धि की ताकत कब थकने वाली थीं?
कौशल ने सब सुविधाओं का लिया सहारा है?
मुश्किल राहों से भी होकर पार उतारा है।
अन्वेषण की कथा लिख रहे नित्य अचल रह कर
हम काला सोना ढूंढ़ रहे हैं धरती के भीतर।

वांछित जगहों को पहले तो चिन्हित करते हैं।
कुछ मीटर का गड्ढा कर विस्फोटक भरते हैं।
भूगर्भ तरंगे विस्फोटक द्वारा फिर पैदा होती हैं।
उनका सीस्मोग्राफों से हम अंकन करते हैं।
शहरों को गतिमय रखते, खुद जंगल में रहकर।
हम काला सोना ढूंढ़ रहे हैं धरती के भीतर।

अंकित ग्राफों का वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं।
फिर संभावित क्षेत्रों का पुनर्निरीक्षण करते हैं।
वेधन की विधियों का फिर निर्धारण होता हैं
ढेंकी या रोटरी ड्रिलिंग से कूप शुरू होता है।
लक्ष्य वेध तक रूके नहीं, एक बार शुरू होकर,
हम काला सोना ढूंढ़ रहे हैं धरती के भीतर।

हाइड्रोकार्बन की तलाश इतनी आसान नहीं,
धरती में मीलों तक वेधन, बच्चों का काम नहीं,
लॉगिंग, सीमेंटिंग और केसिंग, इसमें शामिल है
इनसे भी उपर जन-धन का जोखिम लाजिम है।
ओएनजीसी को मिली दक्षता, कितना कुछ खोकर,
हम काला सोना ढूंढ़ रहे हैं धरती के भीतर।

आदमी सा काम कर

– डॉ. आदित्य शुक्ल

यदि आदमी कहता है खुद को, तो आदमी-सा काम कर।
व्यर्थ गवाँ के ज़िंदगी, न इंसानियत को बदनाम कर।

जीवन कठिन संग्राम है माना, मगर साहस न खोना।
हाथ असफलता लगे, तो धैर्य रख, निराश न होना।
जब तलक मिलती न मंज़िल, पल भर न विश्राम कर।
यदि आदमी कहता है खुद को, तो आदमी-सा काम कर।

याद रख दो पाँव तेरे, फौलादी दो हाथ हैं।
भावना सम्पन्न तू, मस्तिष्क तेरे साथ है।
कर्म की ज्योति जला, अंधेरे का काम तमाम कर।
यदि आदमी कहता है खुद को, तो आदमी-सा काम कर।

मस्ज़िदों, गुरुद्वारों में जाके तू गिरता है क्यूँ।
क्या रखा उन पत्थरों में, जिसे पूजता फिरता है तू।
अपनी किस्मत को बना खुद, जग में अपना नाम कर।
यदि आदमी कहता है खुद को, तो आदमी-सा काम कर।

रक्त वर्षों से लहू में खौलता है
आप कहते है क्षणिक उत्तेजना है
–दुष्यंत कुमार

एक भी आँसू न कर बेकार

– रामावतार त्यागी

एक भी आँसू न कर बेकार
जाने कब समंदर मांगने आ जाये

पास प्यासे के कुआँ आता नहीं है
यह कहावत है अमरवाणी नहीं है
और जिसके पास देने को न कुछ भी हो
एक भी ऐसा यहाँ प्राणी नहीं है

कर स्वयं हर गीत का श्रृंगार
जाने देवता को कौन सा भा जाये

चोट खाकर टूटते हैं सिर्फ दर्पण
किन्तु आकृतियाँ कभी टूटी नहीं हैं
आदमी से रूठ जाता है सभी कुछ
पर समस्यायें कभी रूठी नहीं हैं
हर छलकते अश्रु को कर प्यार
जाने आत्मा को कौन सा नहला जाय!

व्यर्थ है करना खुशामद रास्तों की
काम अपने पाँव ही आते सफर में
वह न ईश्वर के उठाए भी उठेगा
जो स्वयं गिर जाय अपनी ही नज़र में
हर लहर का कर प्रणय स्वीकार
जाने कौन तट के पास पहुंचा जाये

तर्क-ए-वफा के बाद ये उसकी अदा कतील
मुझको सताये कोई तो उसको बुरा लगेगा।
–कतील शिफाई

तुम्हारी आँख के आँसू

– प्रवीण शुक्ल

कभी जब याद आते हैं तुम्हारी आँख के आँसू
मुझे बेहद सताते हैं तुम्हारी आँख के आँसू

रहीं मजबूरियाँ क्या-क्या हमारे दरमियाँ अक्सर
व्यथा उनकी सुनाते हैं तुम्हारी आँख के आँसू

कभी बदली, कभी बारिश, कभी झरना, कभी दरिया
कभी सागर दिखाते हैं तुम्हारी आँख के आँसू

नयन की नाव में दिल के सफ़र पर जब निकलता हूँ
मुझे तब-तब डुबाते हैं तुम्हारी आँख के आँसू

ग़मों की रेत पर तपते हुए जीवन के सहरा में
हमेशा सूख जाते हैं तुम्हारी आँख के आँसू

कभी तुम आँख में अपनी इन्हें लाना न भूले से
किसी का दिल दुखाते हैं तुम्हारी आँख के आँसू

तुम्हारे लब की इक मुस्कान देती है खुशी मुझको
मगर बेहद रूलाते हैं तुम्हारी आँख के आँसू

मैं अगर खामोश था तो क्या हुआ
तू किताबों की तरह पढ़ता मुझे
–सर्वेश चंदौसवी

मकान

– प्रो. अनंत मिश्र

आदमी के ऊपर छत होनी ही चाहिए
वह घरेलू महिला
हमेशा मिलने पर कहती है
उसका बंगला नया है
उसके नौकर उसके लान की सोहबत ठीक करते हैं
और वह अपने ड्राइंगरूम को
हमेशा सजाती रहती है।
मैंने नीले आसमान के नीचे
खड़े होकर अनुभव किया
कि छत मेरे सिर से शुरू होगी
या मेरे सिर के कुछ ऊपर से
जब मैं मकान बनाऊँगा,
मैं अब मकान हो गया था
और मेरी इन्द्रियाँ जंगलों की तरह
प्रतीक्षा करने लगी थीं
मैंने सोचा
यह रहे मेरे नौकर-चाकर
मेरे हाथ और पाँव
यह रहा मेरा दरवाजा मेरा चेहरा
यह रहा मेरा ड्राइनिंग रूम
मेरा पेट
यह रहा खुला हुआ मेरा
बरामदा
मेरी छाती,
यह रहे कैक्कटस कटीले
मेरी दाढ़ी मूँछ
और यह रहा मेरा दिल
मेरा ड्राइंग रूम,
मैंने पूरा मकान मिनटों में
खड़ा कर लिया था,
और अब मैं आराम से
सैर पर जा सकता था,
जेब में मूँगफली भरे हुए
और चिड़ियों से मुलाकात करते हुए।

हो बहुत मुबारक नया साल

– दीपिका जोशी 'संध्या' (कुवैत)

पहने सपनों की विजय माल
हो बहुत मुबारक नया साल

नये साल की नयी किरन
सब गान मधुर पावन सुमिरन

सब नृत्य सजे सुर और ताल
हो बहुत मुबारक नया साल

फिर से उम्मीद के नये रंग
भर लायें मन में नित उमंग

खुशियां ही खुशियां बेमिसाल
हो बहुत मुबारक नया साल

उपहार पुष्प मादक गुलाब
मीठी सुगंध उत्सव शबाब

शुभ गीत नृत्य और मधुर ताल
हो बहुत मुबारक नया साल

इश्क नाजुक मिजाज है बहुत
अक्ल का बोझ उठा सकता नहीं
—अकबर इलाहाबादी

तुमसे क्या मांगूं भगवान

– **हिम्मत मेहता** (अमेरिका)

तुमसे क्या मांगूं भगवान
अगर मुझे तुम दे दो मेरा
मुंह मांगा वरदान
तुमसे क्या मांगूं भगवान

बहुत बड़ा है क्षेत्र मांग का
इच्छा सकल जगत की
जैसे मरूस्थल की बालू को
होती तृष्णा जल की

प्रश्न नहीं पर क्या क्या मांगूं
क्या मैं छोड़ूं पीछे
असमंजस में खड़ा जोड़ कर
लालच मन में भींचे

अगर मान लो मैंने मांगा
अतुलित सुख आनन्द
क्या न मुझे फिर करना होगा
चिंता करना बंद?

क्यों न मांग लू ऐसा जीवन
चिंता रहे न पल भर
किंतु छोड़ना चिंता हो तो
छोड़ना होगा सब डर

डर से छुटकारा क्यों मांगू
तृष्णा क्यों न छोडू
संतोषी जीवन की क्यों न
उजली चादर ओढू?

मन संतोषी हो तो
जग में सब कुछ एक समान
नहीं धारणा किसी वस्तु की
सब खुशियां आसान

वस्तु विशेष भला क्यों मांगूं
ना कोई वरदान
दिया तुम्हीं ने तो सब कुछ है
बचा न कोई प्रदान

तुमसे क्या मांगूं भगवान

आंख उसकी दिल पे थी और दिल मेरा आंखों में था
जब चुराई उसने आंखें तब कहीं ये दिल बचा
–शिवकुमार बिलग्रामी

न जाने क्यों

– **हरिहर झा** (आस्ट्रेलिया)

भूख से कराहते बालक को देख कर
न जाने क्यों
मेरे हाथ
उसे रोटी देने के बदले
दार्शनिक गुत्थी में उलझ गये
कि भूख क्या है और दुख क्या
शरीर क्या है और आत्मा क्या?
निरीह अबला को
घसीट कर ले जाते देख कर
न जाने क्यों मेरी आंखे
उस दो हड्डियों वाले पापी को
शर्म से डुबाने के बदले
विचार में खो गई कि यहां
मजबूर कौन है और अपराधी कौन
प्यार क्या है और वासना क्या?
साम्प्रदायिक दंगे में
जिन्दा छुरियों और कराहती लाशों के बीच
चीत्कार सुनने के बदले
न जाने क्यों मेरे कान
दुनियादारी का नाम देकर
ओछेपन की दलदल में उतर गये
यहां हिन्दू कौन है और मुसलमान कौन
अपना कौन है और पराया कौन?
बांध का छेद बुदबुदाते देख
न जाने क्यों
मेरे पग
सुप्त तंत्रियों और ऊंघते दरवाजों को
भड़भड़ाने के लिये
भागने के बदले
विप्लव के आह्वान में डूब कर
प्रलय की कल्पना करने लगे
कि अब
मनु कौन है और कामायनी कौन
सृष्टि क्या है और वृष्टि क्या?
न जाने क्यों
क्यों और क्यों
मेरे आंख कान हाथ पग
सब के सब दिमाग हो गये हैं
और दिमाग?
इन धूर्त बाजीगरों की कठपुतली

दे गयी ताजा हवा खुश्बू का नजराना मुझे
अब समझता है तो समझे फूल बेगाना मुझे
–सर्वेश चंदौसवी

गुमशुदा

– **स्वप्न मंजूषा शैल** (कनाडा)

क्या तुमने देखा है?
एक श्वेतवसना तरूणि को,
जो असंख्य वर्षों की है
पर लगती है षोडशी।
इस रूपमाला को देखे हुए
बहुत दिन हो गए,
मेरे नयन पथराने को आए,
परन्तु दर्शन नहीं हो पाए।
मैंने सुना है,
उस बाला को कुछ भौतिकवादियों ने
सरेआम जलील किया था।
अनैतिकता ने भी
अभद्रता की थी उसके साथ।
बाद में
भ्रष्टाचार ने उसका चीरहरण
कर लिया था।
और ये भी सुना है
कि कोई बौद्धिकवादी, कोई विदुषक
नहीं आया था उसे बचाने।
सभी सभ्यता की सड़क पर
भ्रष्टाचार का यह अत्याचार
देख रहे थे।
कुछ तो इस जघन्य कृत्य पर
खुश थे,
और कुछ मूक दर्शक बने
खडे रहे।
बहुतों ने तो आखें भी फेर ली
उधर से,
और कुछ ने तो इन्कार ही कर दिया
कि ऐसा भी कुछ हुआ था।
तब से,
ना मालूम वो युवती कहाँ चली गई।
शायद उसने अपना मुँह
कहीं छुपा लिया है,
या फिर कर ली है आत्महत्या,
कौन जाने।
अगर तुम्हें कहीं वो मिले
तो उसे उसके घर छोड़ आना।
उसका पता है :
सभ्यता वाली गली।
वह नैतिकता नाम के मकान में रहती थी
और उस युवती को हम
'मानवता' कहते थे।

रोशनी करने का मतलब यह नहीं होता कि तुम
जिसको पर्दा चाहिए उसको भी बेपर्दा करो
–कुअंर बेचैन

शिक्षा का संधान चाहिए

– रामकृष्ण द्विवेदी 'मधुकर' (ओमान)

तम को जगमग करने वाली शिक्षा का संधान चाहिए।
सुप्त हृदय में ज्योति जले यह जन-जन को वरदान चाहिए।।

सब उर हो जाएं आलोकित
तान शिखा से रहे सुशोभित
तार-तार को कर दे झंकृत
ऐसा वर वित्तान चाहिए।
तम को जगमग करने वाली शिक्षा का संधान चाहिए।

जीवन हिम सदृश धवल हो
मन बुद्धि विवेक विमल हो
आचार-विचार नवल हो
ऐसा अनुसंधान चाहिए।
तम को जगमग करने वाली शिक्षा का संधान चाहिए।

युग-युग से मुरझे मानस को
नीरवता मय शून्य क्षितिज को
तान रश्मि से दीप्त अलंकृत
मुस्काती मुस्कान चाहिए।
तम को जगमग करने वाली शिक्षा का संधान चाहिए।

फूलों में भर दे सुगंधि जो
मधु ऋतु को मादकता दे दे
पावस की हरियाली जैसा
प्रमुदित वर्तमान चाहिए।
तम को जगमग करने वाली शिक्षा का संधान चाहिए।

सघन तिमिर में रहे भटकते
शोषित पीड़ित पशुवत जन के
सोये उर को जागृत कर दे
ऐसा सुर संग्राम चाहिए।
तम को जगमग करने वाली शिक्षा का संधान चाहिए।
सुप्त हृदय में ज्योति जले यह जन-जन को वरदान चाहिए।

अरी मौत अपना कदम तू हटा ले

– डॉ. मधु भारतीय

धरा पर लुटाया नहीं प्यार अब तक,
अरी मौत अपना कदम तू हटा ले।

समय की तृषित आत्मा के अधर पर,
अभी तो सुधा बूँद बनना मुझे है,
अभी तो किसी झोंपड़ी की अमा में,
मधुर चाँदनी-सी उतरना मुझे है।

किसी नव कली को उठा धूल में से,
बनाया नहीं देव श्रृंगार अब तक।
अरी मौत अपना कदम तू हटा ले।

हुई मौन आँसू-भरा गीत गाकर,
उसी आँख में अब सपन तो बसा लूँ
बिना प्यार के चल रहा जो अकेला,
ज़रा उस पथिक की थकन तो मिटा लूँ।

किसी की लुटी-सी, बुझी जिन्दगी में,
बुलाया नहीं दीप-त्यौहार अब तक।
अरी मौत अपना कदम तू हटा ले।

चलेंगे बहुत इस कँटीली डगर पर,
ज़रा बीन कर शूल पथ साफ कर लूँ
बुरा कुछ किया है, बुरा कुछ सहा है,
ज़रा माफ़ हो लूँ, ज़रा माफ़ कर लूँ।

किसी की बहकती नज़र को बदलकर,
दिखाया न रंगीन संसार अब तक।
अरी मौत अपना कदम तू हटा ले

अभी खेत, खलियान, चौपाल, पनघट,
नदी के किनारे ज़रा घूम लूँ मैं,
उमड़ती-घुमड़ती-बरसती घटा में,
ज़रा भीग लूँ मैं, ज़रा झूम लूँ मैं।

उमर घट रही है, सफ़र बढ़ रहा है,
उठी पर हृदय से न झंकार अब तक।
अरी मौत अपना कदम तू हटा ले।

निकल देह के पींजरे से किसी दिन,
कहीं प्राण-पंछी करेगा बसेरा,
कहीं प्रात होगा, कहीं दिन ढलेगा,
कहीं फिर हँसेगा सुनहरा सवेरा।

चलूँ साथ कैसे, लगी पैठ है, पर
न पूरा हुआ साँस-व्यापार अब तक।
अरी मौत अपना कदम तू हटा ले।

इश्क की इंतिहा हो गयी
एक सूरत खुदा हो गयी
–नित्यानन्द 'तुषार'

ग़जल

– तूलिका सेठ

आँखों में आरजू के सपने उभर रहे है
जीने का नाम लेकर, हम रोज़ मर रहे हैं।
ये जिन्दगी भी कैसा है खेल ये दिखाती
खुशियाँ, समेटने को, ये अश्क झर रहे हैं।
माना कि हमको तुमसे उम्मीद थीं हजारों
पर साथ चलने वाले कब हम सफर रहे हैं।
लाखों ही दर्द मुझको, दुनिया ने दे दिए हैं
अब दर्द धीरे-धीरे दिल में उतर रहे हैं।
तुम दर्द मुझको देकर, हर रोज परखते हो
सोचो, तो गम तुम्हारे क्या कर असर रहे हैं।
देते हो कभी खुशियाँ, तो बेपनाह देते
टूटे न सिलसिला ये, हम इससे डर रहे हैं।

निवेदन

■ आप मेरे ई मेल-आई डी kavi**sunil**jogi@gmail.com पर विज्ञापन या रचनाएं भेजकर पत्रिका की निरंतरता में अपना योगदान दे सकते हैं।

■ समीक्षा के लिए अपनी सद्यःप्रकाशित पुस्तक की दो प्रतियां हमें भेज सकते हैं।

■ यदि 'पारस-पखान' आपको पसंद है, तो उसके नियमित सदस्य बनिए। स्वयं पढ़कर और दूसरों को भी इसका सदस्य बनाकर आप हमारे अभियान में सहभागी बन सकते हैं। कम-से-कम तीन से पांच वर्ष हेतु सदस्य बनने के लिए संपादकीय कार्यालय में अपनी धनराशि प्रेषित करें।

वर्तमान साहित्य एवं विचारधारा को लेकर डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की दृष्टि

(**डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी** के साथ *डॉ. अभिषेक कुमार मिश्र* की बातचीत)

क्या आपको लगता है कि आज के साहित्य में वैचारिक टकराहट ज्यादा प्रबल हुई है जिसके कारण प्रत्येक साहित्यकार विभिन्न खेमों में बंटता जा रहा है? एक स्वस्थ साहित्य के लिए इसे कहाँ तक ठीक माना जा सकता है?

वैचारिक टकराहटें स्वस्थ साहित्य के लिए या कहें कि साहित्य के स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी होती हैं। इनसे साहित्य का वैचारिक क्षितिज विस्तृत होता है। नई नई दिशाएं खुलती हैं। चिंतन के नए क्षेत्रों और नई दृष्टियों से साहित्य भी नया होता रहता है। मगर हिन्दी में वैचारिक टकराहट जैसी स्थिति नहीं है। आपको जो खेमेबन्दी दिख रही है वह कुछ व्यक्तियों की है। इनमें विचार कम, निजी लाभ लोभ ज्यादा है। विचारों को आधार बनाने वाले लोग व्यक्तियों से नहीं, विचारों से जुड़ते हैं और उनकी उपयोगिता या प्रासंगिकता को रेखांकित करते रहते हैं। वे उन्हें अपने लेखन में उतारते हैं और उनसे रस ग्रहण करते हैं। हिन्दी में केवल गुटबाजी है। एक ही विचारधारा को मानने वालों में कई-कई गुट हैं। उदाहरण के लिए कहें तो प्रगतिशील लेखक संघ, जनवादी लेखक संघ और जनसंस्कृति मंच के बीच वैचारिक सीमा रेखा खींचना मुश्किल हो जायेगा। यदि ये संगठन राजनीतिक दलों के आधार पर बने हैं तब तो और भी बुरा है। राजनीतिक दलों के पिछलग्गू होकर साहित्यिक गुट बनाना तो साहित्य की पराजय है।

अगर हम मौलिकता पर विचार करें तो उसे आप वर्तमान साहित्य में किस रूप में देख रहे है?

अंग्रेजी में एक उक्ति है, All Originality is an undetected theft, अर्थात कोई भी मौलिकता एक न पकड़ी गयी चोरी होती है। दुनिया में इतना विचार हो चुका है और इतना कुछ कहा जा चुका है कि कोई फिजूल ही मौलिक बात कहना लगभग असंभव है। लेकिन इसका एक दूसरा पहलू भी है और वह यह कि संसार निरंतर परिवर्तनशील और गतिशील है। इसमें व्यक्ति के भाव और विचार बदलते रहते हैं। विचारों में तो अपेक्षाकृत कम मगर अनुभवों में बदलाव बहुत सहज है। रचना में रचनाकार के अनुभव की नवीनता होनी चाहिए। यदि कोई रचनाकार अपने निजी अनुभव लोक को शब्दबद्ध करे तो निश्चय ही उसमें विशिष्टता और नवीनता होगी, जिसे मौलिक भी कहा जा सकता है। साहित्य में मौलिकता को इसी रूप में देखा जा सकता है।

कविता के संदर्भ में कुछ बुनियादी शर्तें हुआ करती थीं, जैसे कि उसमें रसात्मकता, छन्दोबद्धता एवं लयात्मकता का होना अपरिहार्य माना जाता था। आज की कविता में छन्दोबद्धता एवं रसात्मकता को स्वीकार नहीं किया जाता है। आपकी क्या राय है?

हिन्दी में छायावाद के बाद कविता के शिल्प में एक प्रकार की अराजकता दिखाई पड़ती है। निराला और पंत ने जब छन्दों के बंधन से मुक्ति की मांग की थी तो वे छन्दों के भी ज्ञाता और उसके कुशल प्रवक्ता थे। इसी प्रकार जब अज्ञेय ने नये बिम्बों, प्रतीकों की मांग की थी तो वे भी नवीनता के पक्षधर थे। मगर इसका अधिकांश कवियों पर अच्छा असर नहीं पड़ा। उन्होंने अत्यंत आसान रास्ता अपनाया और छंद-लय आदि को व्यर्थ मान लिया। वस्तुतः छन्द और लय कविता को सौन्दर्य और दीर्घ आयुष्य प्रदान करते हैं। इनके बिना कविता निर्जीव और गद्यात्मक हो जाती है। रस को तो

कविता की आत्मा पहले ही माना जाता था और आज भी माना जाना चाहिए। रस का अर्थ होता है भाव। यदि कविता में भाव नहीं है तो फिर वह क्या है जो पाठक पर प्रभाव छोड़ सकता है?

आज साहित्य के समाजशास्त्र पर विशेष बल दिया जा रहा है। बहुत सारे समीक्षकों की इस पर स्वतंत्र पुस्तकें भी आ चुकी हैं। समाजशास्त्रीय समीक्षा से आज की कविता का मूल्यांकन कहाँ ठीक है?

समाजशास्त्रीय समीक्षा कविता के भीतर से समाज का विश्लेषण करती है। शब्दों के भीतर उनका समाज भी उपस्थित रहता है। शब्द और शब्द में लिखी गई कोई रचना समाज से रहित नहीं होती। समाजशास्त्रीय आलोचक यदि इसका विश्लेषण करता है तो बहुत ही अच्छा है पर उसे किसी रचना से अपने मन की कोई मांग नहीं करनी चाहिए। रचनाकार और आलोचक का संबंध मांग करने वाले और उसकी पूर्ति करने वाले के रूप में नहीं होती।

आज का साहित्यकार अपनी प्राचीन परम्परा एवं साहित्यशास्त्र से कहाँ तक प्रेरणा ले रहा है?

जब से आधुनिकता और आधुनिकबोध का नारा शुरू हुआ है और हिन्दी के लेखकों पर मार्क्सवाद का प्रभाव बढ़ा है हिन्दी के साहित्यकार अपनी प्राचीन परम्परा और साहित्यशास्त्र से कम ही प्रेरणा ले रहे हैं। अब तो उत्तर आधुनिकता का भी प्रभाव काफी पड़ चुका है। इनके प्रभावों में जो लेखक लिख रहे हैं उनके विचार भारतीय परम्परा और शास्त्र से अलग होना स्वाभाविक है। मार्क्सवादी या आधुनिकतावादी या उत्तर आधुनिकतावादी लेखकों की कृतियों में उन्हीं विचारकों के नाम और उद्धरण बार-बार दिखाई पड़ते हैं। भारतीय परम्परा और साहित्यशास्त्र बहुत प्राचीन और बहुत समृद्ध है। उनमें बहुत कुछ साहित्य का शाश्वत और सार्वकालिक सरोकार है पर जब उसकी ओर आज के हिन्दी लेखकों का ध्यान जाय तब तो। विडंबना यह है कि पश्चिम के विचारकों और यहां तक कि पश्चिम के उत्तर आधुनिक विचारक की ओर ध्यान तो जाता है, पर स्वयं हिन्दी के विचारक उससे अनभिज्ञ बने रहते हैं। यह हीनताबोध की ही स्थिति कही जा सकती है।

आज समीक्षकों के बीच कुछ ज्यादा ही खींचतान चल रही है। ऐसे में आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षा क्या नूतन दिशा निर्देश दे सकती है?

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षा भारतीय समीक्षाशास्त्र के प्रतिमानों पर आधारित तथा कृतिकेन्द्रित समीक्षा थी। उन्होंने अपनी आलोचना के मान बड़े कवियों की कृतियों से निकाला था। उनकी यह आलोचना दृष्टि हिन्दी के किसी भी आलोचक को दिशा निर्देश दे सकती है।

अगर समीक्षकों में विचारधारा को आधार बनाकर एक श्रेणी बनायी जाये जैसे मार्क्सवादी और गैर मार्क्सवादी तो आप स्वयं को किसमें मानेंगे?

मैं स्वयं को गैर मार्क्सवादी ही मानूंगा। मगर इसी के साथ यह भी जोड़ना चाहूंगा कि गैर-मार्क्सवादी होने का अर्थ कोई और 'वादी' नहीं है। वस्तुतः मैं किसी भी एक विचारधारा की कैद लेखक के लिए अहितकर और अनुपयुक्त समझता हूँ। किसी एक 'वाद' में बंधकर लेखक उसकी सीमाओं में बंध जाता है और उसकी आलोचना का अपना नैतिक और बुनियादी अधिकार खो देता है।

क्या आपको लगता है कि अपनी प्राचीन साहित्यशास्त्रीय सम्पदा को वर्तमान संदर्भ में अपटूडेट न करने की एक लापरवाही आज के समीक्षकों को भी है?

हाँ, यह हमारे समीक्षकों की ही जिम्मेदारी है कि वे प्राचीन और मूल्यवान काव्यशास्त्र को अपने समय के संदर्भ में समृद्धतर करते जाएँ। भारतीय काव्यशास्त्र में जो कुछ शाश्वत महत्व का है उसे भी भूल

जाना एक चिन्ताजनक लापरवाही है।

समीक्षा के प्रतिमान क्या प्रत्येक रचना के भीतर से निकलने चाहिए अथवा एक स्वतंत्र पैमाना बनाकर कृति का मूल्यांकन किया जाना चाहिए?

समीक्षा के प्रतिमान रचना के भीतर से ही निकलते हैं, पर हर रचना के भीतर से नहीं। कुछ कालजयी रचनाएँ होती है जो रचना के मान विकसित करती हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि आलोचक का मस्तिष्क शून्य में होता है। आलोचक के मस्तिष्क में पहले से अनेक कालजयी रचनाएँ होती हैं, अपने समय की वास्तविकताएँ और प्रचलित विचारधाराएँ भी होती हैं। इन सबके साथ वह रचनाओं के पास जाता है, मगर कुछ ऐसी रचनाएँ होती है जिनसे टकराने में उसके संचित प्रतिमान पर्याप्त नहीं होते, ऐसी स्थितियों में उसे उन रचनाओं के आधार पर अपने प्रतिमानों को परिवर्तन करना पड़ता है। रचनाधारा में मोड़ या परिवर्तन उपस्थित करने वाली कृतियों के साथ ऐसा घटित होता है। उदाहरण के लिए रेणु की कथाकृतियाँ या रघुवीर सहाय की कविताएँ आलोचक के समक्ष इसी प्रकार की चुनौती उपस्थित करती हैं।

आज साहित्य में ''स्त्री विमर्श एवं दलित विमर्श की चर्चा जोरों पर है। क्या स्त्री ही स्त्री की वास्तविक स्थिति को ठीक ढंग से जान सकती है दलित ही दलित की स्थिति को ठीक ढंग से अनुभव कर सकता है? क्या आपको लगता है कि यह स्थिति साहित्य के लिए अहितकर तथा अस्वस्थप्रद है? क्या यह साहित्य को बांटने का एक प्रयास नहीं है?

'स्त्री विमर्श' और 'दलित विमर्श' हमारे समय के विमर्श हैं। इसमें कोई संदेह नहीं की स्त्री की वेदना को जितना स्त्री अनुभव कर सकती है और इसी प्रकार दलित की पीड़ा को जितना एक दलित, उतना सब लोग नहीं महसूस कर सकते। मगर 'रचना', सिर्फ महसूस करने का क्षेत्र नहीं है। रचना में महसूस किये हुए को 'अभिव्यक्ति' देनी होती है। संभव है वह अभिव्यक्ति बेहतर ढंग से कोई पुरूष या सवर्ण देने में सक्षम हो जाय। महात्मा सूरदास ने वात्सल्य का जो अनूठा वर्णन किया वह तो किसी स्त्री ने नहीं किया। रचना कोई प्रामाणिक रिपोर्टिंग नहीं होती, वह एक सर्जनात्मक कृति होती है जिसमें घटनाओं को सार्थक शब्द देना होता है। इसीलिए स्त्री और दलित विमर्श कामचलाऊ और तात्कालिक प्रयत्न हैं। इनके आधार पर व्यापक साहित्य को बांटना उपयुक्त नहीं है।

इधर बड़ी तेजी से पश्चिमी प्रभाव साहित्य पर आ रहा है, जैसे नयी समीक्षा, संरचनावाद, उत्तर आधुनिकता आदि। क्या इससे अपनी मूल अस्मिता नहीं प्रभावित होती?

पश्चिमी प्रभाव तो आयेगा ही। उससे बचा नहीं जा सकता। बचने की चिंता भी नहीं करनी चाहिए। चिंता सिर्फ यह करने की है कि हमारे देश की परिस्थितियों के अनुकूल क्या है। हर मिट्टी में हर प्रकार का पौधा नहीं पनपता। यदि रोपने की कोशिश की जाय तो कुछ दिन बाद वह उकठ जाता है। भारत जो अभी आधुनिक भी नहीं हुआ, उत्तर आधुनिकता का झोंका कैसे बर्दाश्त कर सकता है? साहित्य अपने देश की जनता से विच्छिन्न नहीं हो सकता। वह उसी की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब हुआ करता है।

आप स्वयं एक रचनाकार आलोचक है? ऐसे में आप रचनाकार आलोचकों की आलोचना को कहां तक ठीक मानते है?

हिन्दी में रचनाकार आलोचकों की आलोचना बहुत महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में आप अज्ञेय और निर्मल वर्मा के नाम ले सकते है। नयी कविता की आलोचना में अज्ञेय के ही वैचारिक सूत्र सबसे

अधिक कारगर हुए। सातवें दशक की कविता की अराजक प्रवृत्तियों को खारिज करने में अशोक वाजपेयी की आलोचना सबसे अधिक प्रखर साबित हुई। अपने समय को कुछ लेखकों के मूल्यांकन में निर्मल वर्मा के समीक्षात्मक निबंध बहुत महत्वपूर्ण हैं।

यह माना जाता है कि जो रचनाकार आलोचक हैं, वे अपनी रचना की तरह ही अन्य रचना को भी देखना चाहते है? इससे एक प्रकार की आत्मनिष्ठता का आलोचना में जन्म होता है। यह स्थिति रचना एवं आलोचना के बीच दूरी पैदा नहीं करती?

रचनाकार आलोचकों की आलोचना में स्वयं उन रचनाकारों की रचना के आदर्श उपस्थित हो सकते हैं। इससे आलोचना की वस्तुपरकता अवश्य ही प्रभावित हो सकती है, मगर आलोचक के साथ भी तो यह खतरा रहता है कि वह अपनी विचारधारा को रचना पर थोपने लगता है। वस्तुतः आलोचक भी वही श्रेष्ठ होता है, जो मूल्यांकन करते समय एक रचनाकार बन जाता है। रचनाकार और आलोचक को बहुत स्थूल ढंग से अलग अलग वर्गों में नहीं बांटा जा सकता। टी. एस. इलिएट ने सही कहा है कि आलोचना में रचना के और रचना में आलोचना के तत्व घुले मिले होते है। जहां यह संतुलन होता है वहीं रचना भी बेहतर होती है और आलोचना भी।

आप वर्तमान में साहित्य अकादमी के सदस्य है तथा विश्व हिन्दी सम्मेलन में भी आपने भाग लिया था। ऐसे में आप हिन्दी भाषा के भविष्य को लेकर देश में तथा देश के बाहर कहां तक आश्वस्त है?

हिन्दी भाषा का भविष्य बहुत स्पष्ट नहीं है। भारत का मध्यवर्ग अंग्रेजी की ओर तेजी से आकृष्ट हो रहा है। शायद ही किसी खातेपीते घर के बच्चे हिन्दी माध्यम के स्कूलों में दाखिला ले रहे हों। बोलचाल में भी हिन्दी के बीच आधी अंग्रेजी घुसी हुई है। अंग्रेजी का बाजार है, अंग्रेजी में नौकरियॉ हैं, अंग्रेजी में आभिजात्य का दिखावा है। मगर इन सबके बावजूद हिन्दी बोलने वालों की संख्या बहुत है। विदेशी कंपनियों को भी अपने उत्पाद बेचने के लिए हिन्दी माध्यम का सहारा लेना पड़ रहा है। विदेशों में भी प्रवासी भारतीय अपने बच्चों को हिन्दी की शिक्षा दे रहे हैं। हिन्दी ही उन्हें और उनके बच्चों को अपनी मातृभूमि से जोड़ेगी, ऐसा वे महसूस कर रहे हैं। अतः अंग्रेजी की आंधी में भी हिन्दी की स्थिति बहुत कमजोर नहीं है।

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक–दस्तावेज)
पूर्व विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
वर्तमान में–साहित्य अकादेमी के सदस्य
प्रख्यात रचनाकार, आलोचक एवं वर्तमान में हिन्दी साहित्य के निरंतर सक्रिय एवं मूर्धन्य विद्वान।

रात की बात क्या करे कोई
अब तो धोखे मिले उजालों में।
–सुषमा चौहान 'किरण'

माता जी : फोटो गैलरी

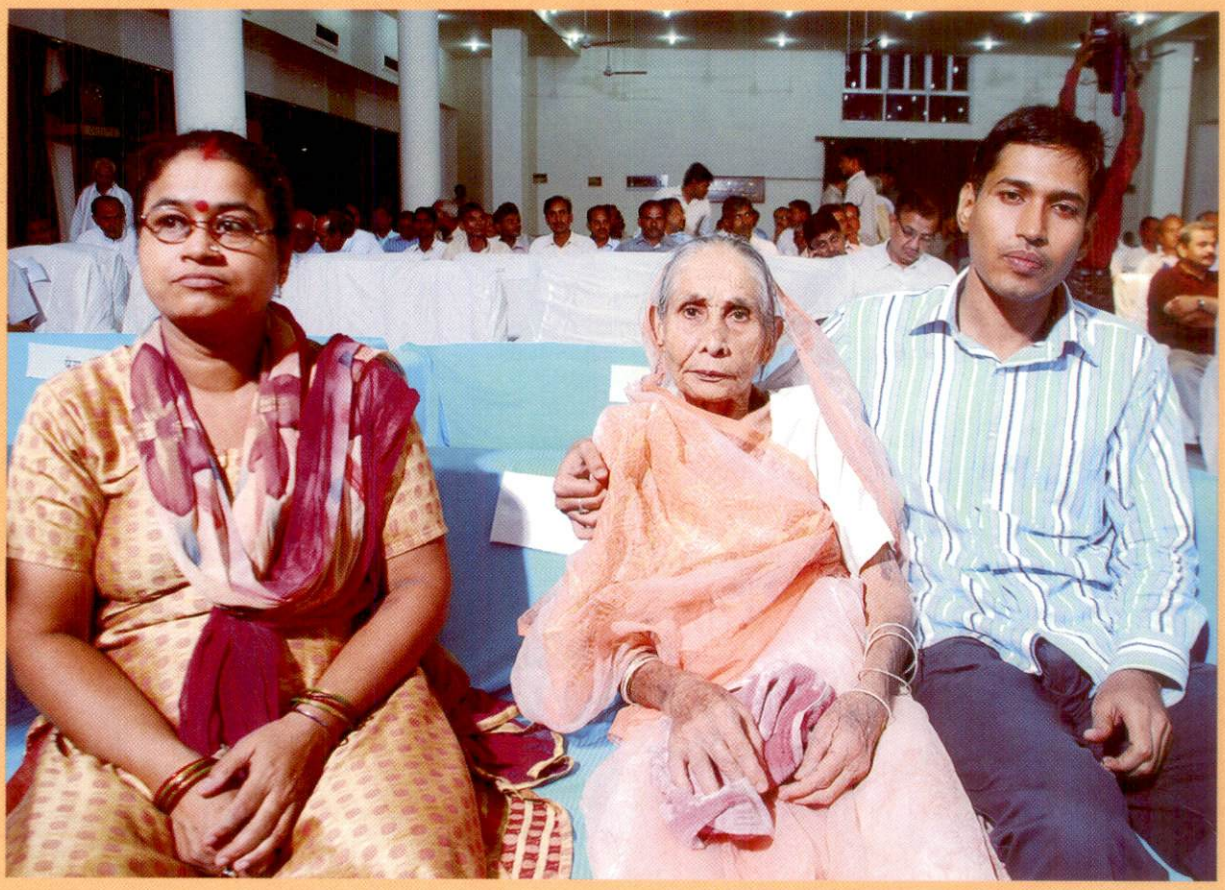

पारस-पखान का सफ़रनामा

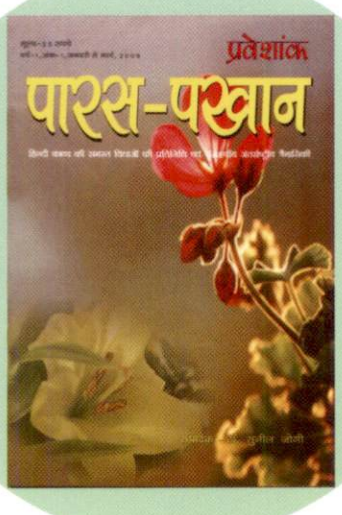

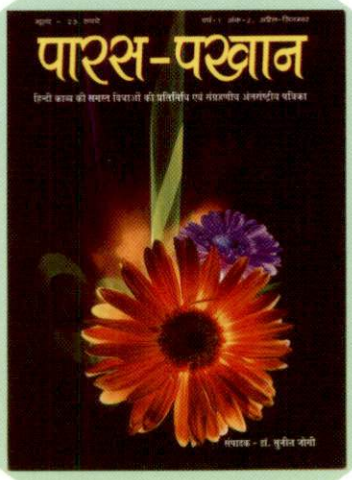

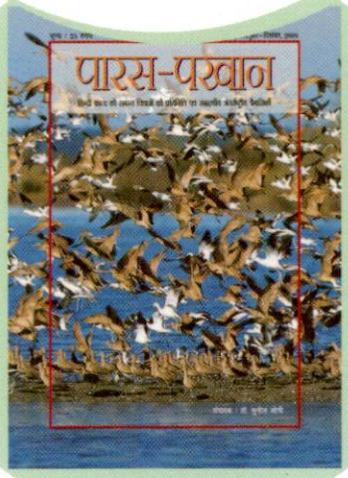

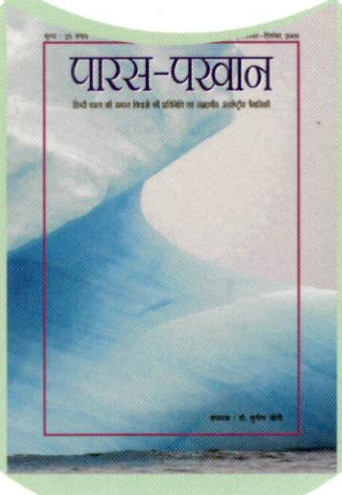

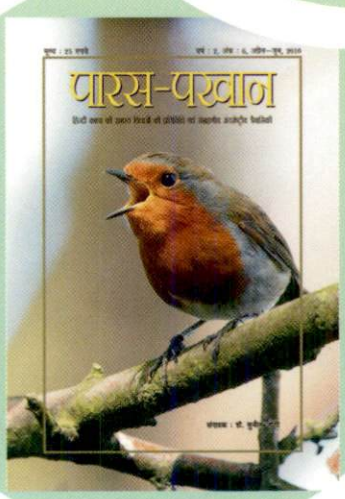

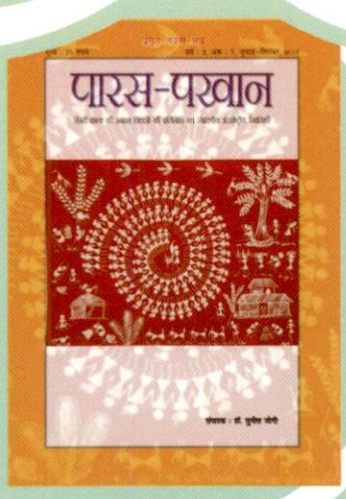

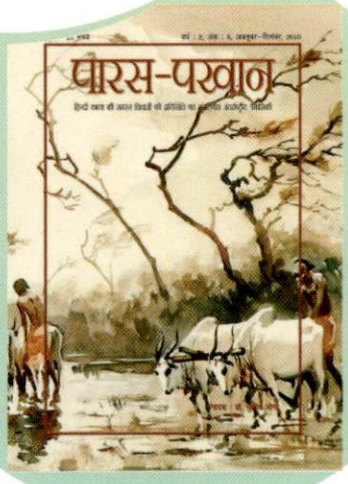

प्रसून प्रतिष्ठान के लिए **डॉ. सुनील जोगी** द्वारा संपादित एवं
डॉ. अनिल कुमार द्वारा सी-49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित।